अध्याय : 5

मोहन राकेश के नाटकों का रंगमंच

अध्याय : 5

मोहन राकेश के नाटकों का रंगमंच

"रंगमंच की पूरी प्रयोग प्रक्रिया में नाटककार केवल एक अभ्यागत, सम्मानित दर्शक या बाहर की इकाई बना रहे, यह स्थिति मुझे स्वीकार्य नहीं लगती। न ही यह कि नाटककार की प्रयोगशीलता उसकी अपनी अलग चार दीवारी तक सीमित रहे और क्रियात्मक रंगमंच की प्रयोगशीलता उससे दूर अपनी अलग चार दीवारी तक। इन दोनों को एक धरातल पर लाने के लिए अपेक्षित है कि नाटककार पूरी रंग-प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग बन सके। साथ यह भी कि वह उस प्रक्रिया को अपनी प्रयोगशीलता के ही अगले चरण के रूप में देख सकें।"

- मोहन राकेश

रंगमंच का अर्थ है, प्रत्यक्ष अभिनय द्वारा अभिव्यक्त करना। रंगमंच लेखक के विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। रंगमंच अन्य मनोरंजन के विधाओं से अलग महत्व रखता है। नाटक शब्द रंगमंच से जुड़ा है। दोनों शब्द परस्पर पर्यायी शब्द हैं। नाटक और रंगमंच मिलकर पूरा शब्द मिलता है। इतिहास में रंगमंच संबंधी उल्लेख मिलते हैं। रंगमंच पर नाटक प्रत्यक्ष रूप से अभिनय के माध्यम से खेला जाता है। रंगमंच का अर्थ "स्टेज", जहाँ नाटक खेला जाता है। रंगमंच के अनेक प्रकार हैं। घुमता रंगमंच यह बात आधुनिक विज्ञान की देन है, लेकिन इससे पहले नाटक के लिए एक ही स्टेज या रंगमंच होता था। पीछे स्थिर पर्दा होता है और उसके सामने प्रेक्षक या दर्शक बैठते थे।

प्रेक्षागृह चाहे कितना भी विस्तृत क्यों न हो सभी प्रेक्षकों की निगाहें रंगमंच पर एकाग्र होती है। इसलिए रंगमंच का अलग महत्व है। नाटक में कथावस्तु का उद्देश्य होता है। लेखक अपने विचार और उद्देश्य को प्रेक्षकों तक पहुँचाना चाहता है। वह जो सोचता है उसे नाटक द्वारा रंगमंच पर दिखाया जाना जरूरी है क्योंकि रंगमंच एक "मास-मिडिया" है। अखबार की तरह नाटक भी एक साथ अनेक दर्शकों तक विचार पहुँचाने की क्षमता रखता है। दर्शक नाटक देखते समय पूर्णतः एकाग्रचित्त होता हे, इसलिए नाटक की कथावस्तु में ऐसी चीज होनी चाहिए जो प्रेक्षक को बाँध ले, उसका चित्त विचलित न हो सके। नाटक के लिए समय का बंधन होता है। नाटक की सफलता या असफलता का निर्णय रंगमंच पर होता है इसीलिए नाटक के अध्ययन में उसके मंचन संबंधी भी विचार होना जरूरी है।

हिन्दी नाट्य रंगमंच

जिस प्रकार आधुनिक हिन्दी साहित्य का आरम्भ हम भारतेन्दु युग से मानते हैं उसी प्रकार हिन्दी नाटक और रंगमंच का आरम्भ भारतेन्दु युग से होता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नाटक और रंगमंच के रिश्ते को समझने और मूर्त स्वरूप देने का कार्य किया। भारतेन्दु ने युग की नब्ज पहचान कर नाटक की विषयवस्तु को समकालीन रंग दिया। उसे मंचीयता प्रदान की अभिनय, निर्देशन आदि में स्वयं अनुभव लिया। भारतेन्दु युग में यदि हम संख्या की दृष्टि से देखें तो लगभग सौ के करीब नाटकों की रचना हुई। नाटकों की विषयवस्तु पौराणिक, ऐतिहासिक, धार्मिक अधिक रही। सामाजिक नाटकों की संख्या पर्याप्त मात्रा में रही। काफी नाटक उस समय मंचित हो गये लेकिन रंगमंच को ध्यान में रखकर नाटक की रचना नहीं की गयी। भारतेन्दु कृत नाटक - विद्यासुन्दर, रत्नावली, पाखंड विडंबन, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, धनंजय विजय, मुद्राराक्षस, कर्पूर मंजरी, भारत दुर्दशा, नीलदेवी आदि हैं। भारतेन्दु काल में अन्य नाटककार निर्माण हो गये जिन्होंने भारतेन्दु की प्रेरणा से नाटकों की रचना की। वे नाटककार थे - 1· प्रतापनारायण मिश्र, 2·बालकृष्ण

भट्ट, 3· लालनिवास, 4· राधाचरण गोस्वामी, 5· राधाकृष्ण दास, 5· अम्बिकादत्त व्यास। इस युग में प्रेमप्रधान नाटक, सुधारवादी नाटक, प्रहसन, व्यंग्य आदि धाराएँ प्रवाहित हुईं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने युग में पहली बार नाटककार और रंगमंच के अद्वैत संबंध को समझा था, इसे ध्यान में रखकर नाट्य की भूमि तैयार की थी। भारतेन्दु के नाटक सोद्देश्य और अपने समय के अनुसार थे। उस समय कोई आदर्श रंगमंच नहीं था। प्रत्यक्ष रूप से उन्हें पारसी रंगमंच मिला। पारसी रंगमंच उस समय उद्भव काल में ही था। पारसी रंग संस्थाएँ पारसी लोगों द्वारा चलायी जाती थीं इसलिए पारसी थिएटर के नाम से जानी जाने लगी। ये थिएटर गंभीर रूचि के नाटक नहीं खेलते थे। इन नाटकों द्वारा रंगमंच को सही दिशा नहीं मिली तथा समकालीन जीवन का चित्रण हुआ। इन संस्थाओं का उद्देश्य शुद्ध व्यवसाय था, रंगमंच या रंगकर्म नहीं था।

भारतेन्दु सर्वाधिक आकर्षित हुए संस्कृत नाटक और रंगमंच की प्रस्तुति शैली की ओर। भरत के नाट्यशास्त्र में बहुत कुछ ऐसा था जो समकालीन रंग सृष्टि के लिए प्रेरणास्त्रोत बन सके। भारतेन्दु ने रंगमंच को विदूषक की कल्पना को नयी पहचान दी। भारतेन्दु स्वयं नाट्यरचना, अभिनय, निर्देशन तथा रंगकर्म के अन्य आयामों के साथ क्रियात्मक रूप से जुड़े थे। नाटकों में रंगसंकेत दिये जाते थे। भारतेन्दु के नाटकों में नाटक के रंगमंचीय तत्व उदा·वेशभूषा, अभिनय, रूपसज्जा, संगीत, ध्वनि, प्रकाश आदि के रंगसंकेत दिये गये हैं। भारतेन्दु ने रंगमंच के संबंध में मौलिक कार्य किया और जो उनकी मौलिक उद्भावनाएँ उन्होंने नाटक और रंगमंच को परस्पर पूरक बनाकर उसे पूर्णता प्रदान की।

भारतेन्दु की असमय मृत्यु से हिन्दी रंगमंच और नाटक को गहरा आघात पहुँचा। रंगमंच, नाटक को भारतेन्दु ने नया आंदोलित रूप दिया। उनके बाद ऐसा कोई प्रभावी व्यक्तित्व नहीं निर्माण हुआ जो इस कार्य को आगे बढाये। अर्थात भारतेन्दु मंडल के नाटककार नाटक लिखते थे, करते थे। पारसी थिएटर लोकप्रिय

हो रहा था। लेकिन हिन्दी नाटक और रंगमंच को विकसित करने की दिशा में भारतेन्दु के समान साहित्यिक व्यक्ति की कमी बनी रही। भारतेन्दु के बाद हिन्दी नाटक और रंगमंच में जयशंकर प्रसाद एक समर्थ नाटककार के रूप में उभर कर सामने आये। प्रसाद के सारे नाटक ऐतिहासिक धरातल पर आधारित हैं। इस समय गुलामी से छुटकारा और राष्ट्रीय भावना से समाज जागृत हुआ था। जयशंकर प्रसादजी ने सज्जन, कल्याणी परिणय, प्रायश्चित, करूणालय, राज्यश्री, विशाख, चंद्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी तथा स्कंदगुप्त आदि नाटकों की रचना की। अंग्रेजों के साथ नवशिक्षा, मुद्रणालय, आदि साधन तथा नये विचारों का निर्माण होता रहा। प्रसाद के समकालिन नाटककारों में कोई उल्लेखनीय नाटककार नहीं हुआ। माखनलाल, प्रेमचंद आदि नाटककारों ने साहित्य सृजन किया लेकिन हिन्दी रंगमंच को इससे कोई बल नहीं मिला। प्रसाद युग में पारसी रंगमंच था जो भारतेन्दु काल में भी था। अब वह पहले से ज्यादा व्यावसायिक हो गया था।

भारतेन्दु की तरह प्रसाद रंगमंच से जुड़े नहीं थे। उनके नाटकों में संस्कृत नाट्य शैली और पश्चिमी नाट्य शैली का मिश्रण किया। प्रसाद का शायद यही तर्क था कि नाटक के लिए रंगमंच हो। प्रसाद के नाटकों में रंगसंकेत हैं लेकिन मंचीयता के लिए असुविधा है। प्रसाद के लिए नाटक प्रधान था और रंगमंच गौण। इ॰1938 से इ॰1947 तक प्रसादोत्तर काल माना जाता है। इस युग में यथार्थ का धरातल था मध्यमवर्ग की चिंता, समस्या को उजागर किया है। लक्ष्मीनारायण मिश्र से लेकर जगदीशचन्द्र माथुर तक सभी समस्या नाटककार माने जाते हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने राक्षस का मंदिर मुक्ति का रहस्य, सिंदुर की होली आदि नाटक लिखें। रंगमंच से मिश्रजी का संबंध नहीं था इसलिए उनके नाटक रंगमंच पर नहीं खेले गये।

सेठ गोविंददास, उपेन्द्रनाथ अश्क, डॉ॰रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर, हरिकृष्ण प्रेमी, श्री॰वृंदावनलाल वर्मा आदि नाटककारों ने रंगमंच पर निबंध लिखें। किंतु किसी ठोस रंगमंच की शुरूआत नहीं हुई। अधिकांश नाटककारों के नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत नहीं हुए। उपेन्द्रनाथ अश्क और हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक रंगमंच पर

खेले गये लेकिन इन नाटकों में रंगमंचीय तत्व अधिक नहीं आ पाये।

आज़ादी के बाद का दशक हिन्दी नाटक और रंगमंच के लिए महत्वपूर्ण रहा। इन दस वर्षों में तीन महत्वपूर्ण नाटक लिखे गये - 1·जगदीशचन्द्र माथुर का "कोणार्क", 2· धर्मवीर भारती का "अंधा युग", 3· मोहन राकेश का "आषाढ़ का एक दिन"। इन तीन नाटकों में रंगमंच के महत्वपूर्ण तत्व मिलते हैं। इन नाटकों में विकसित होने वाले हिन्दी नाट्यरचना के बीज देखने मिलते हैं। "कोणार्क" तथा "आषाढ़ का एक दिन" से ऐतिहासिक, पौराणिक नाटकों की नई परम्परा शुरू होती है तो "अंधा युग" से काव्य नाटकों की और मादा कैक्टस से यथार्थवादी सामाजिक नाटकों की।"[1]

तीनों नाटकों से हिन्दी नाट्यक्षेत्र को नयी दिशा मिल गयी। इन नाटकों की विशिष्टता यह है कि नाटकों की कथावस्तु ऐतिहासिक है लेकिने प्रसाद के युग के जैसी नहीं - उदा·अतीत का गौरव करने वाली या आदर्शवादी। यह कथावस्तु इतिहास के माध्यम से समसामयिक जीवन का बोध देती है। रंगमंच की दृष्टि से ये तीनों नाटक दर्शकों को ज्वलंत प्रश्नों से परिचित कराते हैं। नाटक में रंगमंच के सभी तत्व विद्यमान हैं। मोहन राकेश ने "आषाढ़ का एक दिन" नाटक की भूमिका में लिखा है कि हिन्दी नाटक रंगमंच की किसी विशेष परम्परा के साथ अनुस्यूत नहीं है। राकेश हिन्दी नाटक और रंगमंच को लेकर चिंतित थे।

शिल्प के स्तर पर ये तीनों नाटक भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य तत्वों का उपयोग करते हैं। "सच्चाई यह है कि यह एक बद्ध दृष्टि में बंधने वाला नाटक नहीं है। हर अन्वेषी दृष्टि से आगे यह अर्थ के नए स्तर खोलता है और बहुधा एक से अधिक संकेत देता है।"[2]

निष्कर्षतः यह बात है कि इस दशक के नाटक प्रकाशित, प्रदर्शित हुए। इनसे हिन्दी नाटक और रंगमंच की एक नयी आधुनिक दृष्टि का आरम्भ होता है।

मोहन राकेश का कहना था कि उनका नाट्यलेखन "हिन्दी रंगमंच" की तलाश के रूप में हुआ था। हिन्दी के अपने रंगमंच की यह खोज हिन्दी भाषी प्रदेश की अपनी संस्कृति के प्रश्न से जुड़ी थी। "आषाढ़ का एक दिन" नाटक की भूमिका में राकेश ने लिखा है - "हिन्दी रंगमंच को हिन्दी-भाषी प्रदेश की सांस्कृतिक पूर्तियों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना होगा, रंगों और राशियों के हमारे विवेक को व्यक्त करना होगा। हमारे दैनंदिन जीवन में राग-रंग को प्रस्तुत करने के लिए जिस रंगमंच की आवश्यकता है, वह पाश्चात्य रंगमंच से कहीं भिन्न होगा। इस रंगमंच का रूप-नाटकीय प्रयोगों के अभ्यन्तर से जन्म लेगा।"

नाटक की कला एक बहुआयामी, सामूहिक और सामाजिक कला है जिसमें जीवन की वास्तविकता का उद्‌घाटन होता है। रंगमंच और नाटक दो अलग सत्ता होते हुए भी परस्पर पूरक हैं, क्योंकि नाटक का जन्म रंगमंच के कारण हुआ है और रंगमंच भी नाटक की वजह से अस्तित्व रखता है। साहित्य और कला में नाटक अपना विधागत वैशिष्ट्य होता है। साहित्य के अन्य आयाम उदा॰कविता, कहानी, उपन्यास आदि में शब्द को महत्व होता है। एक साहित्यकार शब्दों के आधार से भावाभिव्यक्ति करता है और यह रचना प्रकाशन के तुरन्त बाद पाठकों के हाथ में पहुँच जाती है। इस कार्य के उपरान्त स्वयं साहित्यकार का कर्तव्य समाप्त हो जाता है। साहित्यकार अपने साहित्य में मनचाही काल्पनिक घटना और पात्रों की सृष्टि कर सकता है जो वास्तविक जीवन में अवास्तविक हो। कविता का कार्य इतना ही होता है कि भावना को शब्द द्वारा व्यक्त करना, घटना, पात्र का होना आवश्यक नहीं है। और समसामयिक युग से संबंध नहीं भी हो तो फर्क नहीं पड़ता।

जहाँ तक नाटक का प्रश्न है, नाटक साहित्य विधा है। लेकिन यह "पुनर्प्रस्तुतिमूलक विधा" है। नाटक का जन्म ही अनुष्ठान से हुआ है।

अपने यहाँ और पाश्चात्यों ने भी नाटक का प्रारंभ धार्मिक अनुष्ठानों में माना है। इसे "चाक्षुष यज्ञ" कहा गया है। नाटक को लिखने के पश्चात उसे प्रेक्षक या समुदाय तक पहुँचाना आवश्यक है। प्रेक्षक और नाटक के बीच में और कोई माध्यम नहीं होता। सीधे दर्शक के समक्ष नाटक प्रस्तुत किया जाता है इसलिए

अनेक समस्याएँ निर्माण होती हैं। नाटक को तात्कालिन जीवन सादृश्यवत और वस्तुगत होना पड़ता है।

नाटक की भाषा महत्वपूर्ण घटक है। नाटक में लिखी जाने वाली भाषा स्वयं लेखक की नहीं होती। भाषा कालानुसार और पात्रानुसार होनी आवश्यक है। उदा॰मोहन राकेश के तीनों नाटकों में कालिदास, नन्द और महेन्द्रनाथ की भाषा में फर्क है। यह भाषा पात्र और कालानुसार लिखी गयी है। आधुनिक युग का व्यक्ति महेन्द्रनाथ, कालिदास की काव्यमय भाषा नहीं बोलता। नाटक में भाषा उन पात्रों की होती है जिन्हें रंगमंच पर अभिनित होना होता है और शब्द भी उन दृश्य और घटना के अनुकूल होते हैं, जो घटना या दृश्य नाटक में स्थित हो। अर्थात नाटक में शब्दार्थमयी योजना नाटक विधा का प्रथम माध्यम है, दूसरा बड़ा माध्यम रंगमंच है जिस पर नाटक अभिनय द्वारा साकार होता है। "नाटक न केवल साहित्य है और न केवल रंगमंचीय कला। यही उसकी जटिलता है।"[3]

नाटक साहित्य की अन्य विधाओं से भिन्न है। कहानी, उपन्यास आदि साहित्य में संवाद एक पूर्वकथन के रूप में आता है। नाटक के संवाद प्रेक्षक की संवेदना के लिए होते हैं और नाटक तात्कालिन जीवन अभिव्यक्ति से जुड़ा होता है। जिस तरह अभिनय, प्रकाश योजना, रूपसज्जा आदि नाट्यकला के अंग हैं उसी तरह नाटक भी नाट्यकला का महत्वपूर्ण घटक है। नाट्यरचना और उसका प्रदर्शन दोनों भिन्न कला नहीं हैं। नाट्यकला के दो महत्वपूर्ण घटक हैं। परस्परपूरक घटक हैं। अतः नाटक साहित्यिक विधाओं में गिना जाता है फिर भी साहित्यिक विधा नहीं है। ऐसी अलग विधा है जिसमें दर्शक और रंगमंच होना प्रथम शर्त होती है। प्रेक्षक रंगमंच पर घटित घटना का अनुभव करते हैं। अनुष्ठान के पक्ष से नृत्य और संगीत कला से समक्ष ठहरता है क्योंकि ये तीनों कलायें दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत होती हैं। लेकिन इन तीन कलाओं में सूक्ष्म फर्क यह है कि संगीत कला में, लय में बदलाव एवं बीच बीच में अंतर होना प्रभावी होता है। ध्वनि माध्यम महत्वपूर्ण होता है। नाटक का संबंध "क्या है ?" की अपेक्षा "क्या घटता है" से अधिक है। यहाँ घटना के घटित होने की क्रिया महत्वपूर्ण है। दूसरी बात

संगीत सुनने के लिये संगीत का ज्ञान थोडा-बहुत क्यों न हो आवश्यक होता है। नाटक में यह बात गौण है। प्रेक्षक सीधे कोरे मन से नाटक का भाव अनुभव कर सकता है। आवश्यकता नहीं की उसे नाटक के अन्य सूक्ष्म या निश्चित अंगों का ज्ञान हो। प्रेक्षक बिना कुछ जाने सिर्फ अनुभूति के पश्चात प्रतिक्रिया दे सकता है। नाटककार जो कुछ रचता है वह निर्देशक और अभिनेता द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत होता है। रचियता को नाटक लिखते समय तय करना पड़ता है कि क्या वह अपना भाव ठीक तरह से, नाटक की सभी गुणवत्ता के साथ प्रेक्षक तक पहुँचाता है या नहीं। नाटक रंगमंच के पर उपस्थित होने से पहले साहित्यकार के मस्तिष्क में प्रथम उपस्थित होता है। अभिनय, साज-सज्जा, प्रकाश, ध्वनि व्यवस्था आदि नाटकीय तत्वों के साथ साहित्यकार के मन में प्रथम नाटक अभिनित होता है।

नाटक लिखते समय नाटककार का उद्देश्य नाट्यलेखन न होकर उसकी अभिव्यक्ति होता है। नाटक में नाटककार ऐसी भाषा प्रस्तुत करता है जो स्वयं नाटककार की नहीं होती नाटक के पात्रों की होती है। पात्रों के संवाद में ध्वनि का चढ़ उतार, लय का ध्यान रखना पड़ता है। भाषा या संवाद सही सही पात्र के अनुसार होने चाहिए। प्रत्येक शब्द और वाक्य का अपना महत्व होता है। मन में स्थित कल्पना को रंगमंचीयता का आवरण चढाना पड़ता है। नाटक के संवाद सीधे सरल वाक्य में नहीं होते वह नाटकीय होते हैं। भावना के स्पंदन वाक्य द्वारा उत्थान पतन व्यक्त करने के लिए नाटक के वाक्य नाटकीय होते हैं। पाठकों की भावना से तादात्म्यता ही शब्द का प्रमुख उद्देश्य होता है। शब्द सार्थक तभी होता है जब वह अभिनेता द्वारा उच्चारित किया जाता है। उद्‌गार के क्षणों में वह पात्र किस मनःस्थिति में है, उद्‌गार का प्रकटन करते समय हो रही शारीरिक क्रिया में है ये सब बातें उद्‌गार को प्रभावपूर्ण बनने के लिए सहायक होती है।

नाटककार पात्र की रचना करते समय नाटक के समयानुसार पात्र गढ़ता है। नाटक के लिये आवश्यक सामग्री मिल सकती है या नहीं इस बात का विचार करता है। रंगमंच पर क्या घटित होता है इसके लिए वह प्रेक्षक की रूचि, अभिरूचि, ज्ञानस्तर, नाटक के तत्व उदा·प्रकाश ध्वनि, संगीत, नृत्य आदि के लिए उसे उपलब्ध तकनीकी उपकरणों की जानकारी जब नाटककार को होती है तभी नाटककार नाटक

में जगह-जगह रंग-संकेत देता चलता है। इन सभी बातों का उद्देश्य प्रेक्षक को नाट्यात्मकता का अनुभव देना होता है। रंगसंकेत देने वाला नाटककार नाटक के पात्रों की शारीरिक क्रिया के संकेत भी देता है जिसके माध्यम से नाटककार की भावना प्रेक्षक तक पहुँच सकती है।

नाटककार के मस्तिष्क में नाटक प्रथम तैयार होता है। नाटक पर संस्कार करने में निर्देशक के साथ नाटककार का महत्वपूर्ण सहयोग होता है। नाटककार रंग-संकेत देता जाता है। निर्देशक, नाटककार की भावना प्रेक्षक तक पहुँचाने में रंग-संकेत की सहायता लेता है। नाट्यलेखन की रचना के पश्चात नाटककार का कार्य समाप्त हो जाता है। नाटक नाटककार के हाथों से निकलकर निर्देशक के हाथों में पहुँच जाता है। इस बिंदु से आगे नाटक प्रस्तुति के लिए तैयार होने की प्रक्रिया शुरू होती है।

निर्देशक नाटककार की भावना सफलता से अभिनित करने वाले अभिनेता और रंगकर्मियों की एक टीम तैयार करता है। नाटक की भूमिकाओं को अभिनेता को सौंप देता है। अभिनेताओं से नाटक का वाचन तथा अभिनय की तालिम लेता है। नाटककार की अभिप्रेत भावना को नाट्यानुभव को रंगमंचीयता प्रदान कर वह उसे दर्शक के सामने प्रस्तुत करता है। नाटक जब रंगमंच पर आता है लेखक नाममात्र रह जाता है। यहाँ आकर नाटककार पृष्ठभूमि में चला जाता है। नाटक की प्रस्तुति का पूरा भार निर्देशक के कंधों पर रहता है। एक कुशल निर्देशक, अभिनेता, प्रकाश ध्वनि संयोजक, दृश्य निर्माता आदि तत्व रंगमंच के लिए अनिवार्य होते हैं। निर्देशक अपनी कल्पनाशक्ति और नाटककार द्वारा दिये रंगसंकेतों का, प्रतीक, घटना और उद्देश्य की सहायता से कल्पना को मूर्त स्वरूप देता है।

नाटक की बागडोर निर्देशक के हाथों में रहती है। नाटक रंगमंच पर जब उपस्थित होता है, यह बागडोर अभिनेता के हाथ में आ जाती है। इस समय अभिनेता और प्रेक्षक आमने-सामने रहते हैं। नाटककार के साथ निर्देशक भी पृष्ठभूमि में चला जाता है। नाट्यलेखन, निर्देशक, अभिनेता और रंगकर्मी यह एक कड़ी होती

है, जो नाटक को रंगमंचीय सफलता देती है। निर्देशक को क्रियाशील भूमिका करनी पड़ती है। संवाद, नाटक की भाषा प्रस्तुति में बाधा उपस्थित कर रही हो तो बदलनी पड़ती है। उदा· एखाद विशिष्ट नाटक में अभिनय का पहलू प्रभावी हो और अन्य तत्व कमजोर हो तो पूरा नाटक अभिनय के आधार पर नाटक को सफल बनाता है। सिर्फ उत्कृष्ट अभिनय अन्य कमजोर तत्वों पर मता देता है। इसलिए नाटक की प्रत्येक कड़ी महत्वपूर्ण है। चारों कडियाँ प्रभावी हो तो नाटक की सफलता निश्चित होती है।

नाटक रंगमंच के बिना अधूरा है। रंगमंच और नाटक परस्पर पूरक है। एक-दूसरे पर निर्भर है। सिर्फ नाटक नाट्यकला का एक अंग है दूसरा अंग निर्देशक, रंगकर्मी, अभिनेता आदि है। दूसरा अंग रंगमंच का महत्वपूर्ण तत्व है। नाटक उसी समय संपूर्ण सफलता प्राप्त करता है जब वह रंगमंच पर उपस्थित होता है। इसलिये नाटक को पुनर्प्रस्तुतिमूलक विधा माना गया है। प्रथम प्रस्तुति नाटककार के द्वारा होती है और द्वितीय प्रस्तुति रंगमंच पर होती है।

दर्शक समूह रूप में नाटक देखता है। रंगमंच में दर्शक समाज का प्रतीक होता है। नाटक का कार्य होता है भावना की अभिव्यक्ति। रंगमंच इसी अभिव्यक्ति को दर्शक के सम्मुख प्रस्तुत करने में माध्यम स्वरूप होता है। जो जैसा है वैसा उपस्थित किया जाता है। अंत में दर्शक ही बताता है कि जो कुछ देखा सुना वह कैसा है। नाटक की प्रमुख जिम्मेदारी होती है दर्शक का समाधान करना। उपन्यास, कहानी, साहित्य विधा का पाठक एक व्यक्ति होता है उसकी प्रतिक्रिया व्यक्तिगत होती है। लेकिन नाटक के सम्मुख समूह होता है, समाज का छोटा प्रतीक होता है। दर्शक के नाटक से मनोरंजन के अतिरिक्त और कुछ और चाहता है। अगर नाटक जीवन सादृश्य न हो तो, दर्शक नाटक को स्वीकार नहीं करेगा।

रंगमंच का विचार करते समय नाटककार कथावस्तु का चयन, तथा उसका प्रस्तुतिकरण किस प्रकार करता है इसे देखना जरूरी है। पात्रों का चयन, उनका चित्रण कैसे करता है। तथा भाषा का प्रयोग, रंगसंकेत किस तरह दिये हैं, इनको

देखना होता है। मोहन राकेश के नाटक चित्रित हुए हैं। मंचन के बाद नाटकों में परिवर्तन भी किया गया है। इस तरह नाटक को रंगमंच से सही रूप में जोड़ा है। नाटक को "दृश्य विधा" बनाया। इसीलिए उन्हें "नाटक का मसीहा" भी कहा गया है।

"आषाढ़ का एक दिन" (1958) वस्तु दृश्यसहित तीन अंकों में प्रस्तुत की गयी है। घटना, स्थल, ग्राम और प्रकोष्ट रहा है। इसमें आठ पुरूष पात्र और चार स्त्री पात्र रहे हैं, लेकिन प्रधानता कालिदास और मल्लिका को रही है। पहले अंक में कालिदास और मल्लिका वर्षा का आनंद लेते दीखते हैं। अम्बिका को कालिदास के प्रति रोष है क्योंकि वह मल्लिका से प्रेम करता है पर विवाह करने तैयार नहीं। घायल हरिणशावक को लेकर कालिदास का आना, पीछे दंतुल का प्रवेश, कालिदास को उज्जयिनी का नियंत्रण और वहाँ जाने से इन्कार, इतनी वस्तु आती हैं। दूसरे अंक में कालिदास का उज्जयिनी जाना, प्रियंगुमंजरी से परिणय, प्रियंगुमंजरी का मल्लिका से चलने कहना, कालिदास का मल्लिका से मिले बगैर लोटना, विलोम-अम्बिका का मल्लिका पर व्यंग्य करना, यहीं दूसरा अंक समाप्त होता है। तीसरे अंक में अम्बिका की मृत्यु, विलोम के साथ मल्लिका का रहना, पुत्री को जन्म देना, कालिदास का लौटना पर यथार्थ को देखकर मल्लिका से विमुख होना ही वस्तु की समाप्ति करता है। 1958 से उसका मंचन होता रहा है।

"लहरों के राजहंस" में भी दृश्य रहित तीन अंक हैं। घटना नंद के भवन में, सुंदरी के कक्ष में घटित होती है। कुल पुरूष पात्र 6 और स्त्री पात्र 3 हैं। यह ऐतिहासिक नाटक है। इसमें नंद का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित किया गया है। सुंदरी जब कामोत्सव की आयोजना करती है यशोधरा भिक्षुणी बनने जा रही होती है। नंद बुद्ध से प्रभावित होता है। जिससे सुंदरी पर आघात होता है। नंद घर त्याग कर चला जाता है, एक ही स्थान पर प्रस्तुत की गयी वस्तु है, इसमें नंद-सुंदरी प्रधान मात्र रहे हैं। 1963 में इलाहाबाद में इसका मंचन हुआ था।

"आधे अधूरे" में दृश्य रहित दो अंक हैं। घटना ड्राइंग रूम में घटित होती है। इसमें कुल पाँच पुरूष पात्र और तीन स्त्री पात्र हैं। इसमें मध्यमवर्गीय समाज का चित्रण हुआ है। यहाँ वह परिवार दिखाया गया है जो विविध प्रकार के, घुटन को महसूस कर रहा है। महेन्द्रनाथ सावित्री पर अवलंबित होने से उपेक्षित है। बीना माँ के प्रेमी मनोज के साथ भागकर विवाह कर लेती है पर उदास है। अशोक बेकार है। किन्नी जिद्दी है। सावित्री पति के रूप में पूर्ण मनुष्य देखना चाहती है पर इस असफलता से न खुद उसे शांति मिलती है न उसके परिवार को। उसका पति स्वयं निर्णय ले नहीं पाता इससे सावित्री को चिढ़ है। अशोक अपने पिता को ले आता है। "थिएटर युनिट" ने इसका अभिनय किया था।

राकेशजी ने ऐसे दृश्य चुने हैं जिसके लिए आवश्यक सामग्री सहजता से उपलब्ध हो। ये दृश्य दोस्तों से सलाह लेकर लिखते, परिवर्तित करतेथे। इसमें रंगमंच का ध्यान अधिक था। "लहरों के राजहंस" की भूमिका में इसे विस्तार से देखा जा सकता है। संकलन त्रय की दृष्टि से तीनों नाटक उत्कृष्ट रहे हैं। राकेश ने दृश्य पूरा परिचय दिया है। पहले दो नाटकों में दृश्यरहित तीन अंक है, तो अंतिम नाटक में दृश्य रहित दो ही अंक हैं। "आषाढ़ का एक दिन" में मल्लिका का घर दिखाया है उसमें प्रथम अंक में दो कुंभ हैं, दूसरे में एक। इससे घर की स्थिति सूचित की है। तीसरे अंक को इन्हीं चीजों द्वारा परिवर्तन सूचित किया है। यथा-स्थान सूचनायें दी हैं।

"लहरों के राजहंस" में पात्र और परिस्थिति आधुनिकता के बोध को संकेतीत करती है। कामोत्सव, मृग, राजहंस के संदर्भों ने उस काल को आकार दिया है जिसमें कथा साकार होती है। सुंदरी के कक्ष की सजावट ऐश्वर्य पूर्ण है। मत्स्याकार आसन, ऊँचे दीपाधार, मदीरा कोष्ठा, शृंगार कोष्ठ, झूला आदि ऐश्वर्य एवं राजमहल की स्थिति दर्शाते हैं। नंद और सुंदरी के बीन का तनाव नाटक के प्रथम दृश्य में व्यक्त हुआ है। चबुतरे पर स्थित दो मूर्तियाँ, एक पुरूष मूर्ति - बाहें फैली हुई, आँखे आकाश की ओर उठी हुई। इस मूर्ति के पीछे दीपाधार, दूसरी नारी

की मूर्ति बाँहें संवलित तथा आँखें धरती की ओर झुकी हुई। दोनों मूर्तियों से स्त्री और पुरूष के स्थिति को दर्शाया गया है। दोनों मूर्तियों के द्वारा स्त्री और पुरूष की मानसिकता को स्पष्ट किया है। यह बिम्ब ही नाटक का मूल उद्देश्य है। इसमें पात्रों की स्थिति सकारण है। श्यामांग महत्वपूर्ण मात्र है। दूसरे अंक में उसकी उलझी मनोदशा दिखायी है। नन्द सुंदरी के शृंगार में व्यस्त है, बुद्ध आकर जाते हैं। नंद सुंदरी की अनुमति लेकर जाता है। यही से द्वन्द आरंभ होता है। सुंदरी नंद का इन्तजार करती है। भिक्षुओं के स्वर के साथ दर्पण का टूटना संकेत है। इस तरह राकेशजी ने अनेक प्रतिकों का मंच सज्जा में सहारा लेकर कथा को सजाया है।

"आधे अधूरे" एक ही कमरे में नाटक चलता है। जहाँ कुछ टूटी खाली चाय की झूठी प्यालियाँ हैं, डायनिंग टेबल, सोफा-सेट, आदि चीजें किसी न किसी तरह टिकी हैं। फटी-पुरानी किताबों का शेल्फ है। गद्दे, परदे, मेजपोश फटे-पुराने हैं। घर के फर्निचर एक अवस्था से मानों की वृत्ति का पता चलता है। किसी को भी इन चीजों से लगाव नहीं वरना ये ऐसी खराब हालत में न होते। काले सूटवाला आदमी आम समाज का प्रतिनिधि है, जो राकेश का मंतव्य बताता है। राकेश ने इन चीजों का निर्देशन किया है जो इन्सानों की तरह अस्तित्व रखती है। इसके द्वारा मध्यमवर्गीय परिवार की आर्थिक व्यवस्था सूचित की है जो खराब है। नाटक में अंतराल को प्रकाश के माध्यम से व्यक्त किया गया है। मंचीय निर्देशन के कारण पात्र ठीक आते-जाते हैं। उसी तरह उनकी कृति जैसे सावित्री का टेबल क्लॉथ में मुँह छुपाके रोना, अशोक का कैंची से कच-कच तस्वीरे काँटना या महेन्द्रनाथ का फाईले झटकना, उनकी मनोवृत्ति सूचित करता है। इसमें तो महेन्द्रनाथ गाली देता नजर या मोढे पर जा बैठने की कृति तक का उल्लेख है। मंचीयता की दृष्टि से यह सफल नाटक माना जाता है।

इसप्रकार ये तीनों नाटक दृश्य-योजना की दृष्टि से और अभिनय को प्रस्तुत करने की दृष्टि से संकलन त्रय को निभाते हुए नजर आते हैं। रंगमंच की वास्तविकता ज्ञान ही नाटक को प्रस्तुत करने में सफलता लाता है।

राकेशजी में निर्देशक के गुण ज़्यादा रहे हैं अतः उनके नाटकों में निर्देशक के लिए अधिक काम नहीं रहा है। निर्देशन की कला एक सर्जनशील कला है। निर्देशक नाटककार द्वारा सर्जित नाटक को पुनः सर्जित करता है। वह पात्रों का नियंत्रण करता है। राकेशजी ने सूचकता से काम लिया है जैसे "आषाढ़ का एक दिन" में मल्लिका के "बच्चे का रोना" उसके पूरे जीवन को स्पष्ट करता है।

प्रकाश योजना / ध्वनि संकेत

प्रकाश योजना से भावाभिव्यक्ति प्रभावपूर्ण होती है। तीन घण्टों में दिन, रात या किसी मौसम का आभास सिर्फ प्रकाश योजना से किया जाता है। ध्वनि नाटक के लिए विशिष्ट मूड का निर्माण करती है। पुरातन काल में ध्वनि के लिए सिर्फ तबला और हारमोनियम का प्रयोग किया जाता था। ध्वनियाँ प्रसंग के गांभीर्य या प्रसंग के रस भाव को उद्‌घाटित करती थी। प्रसंगानुसार ध्वनि बदलते थे। आज भी इस प्रक्रिया में ज्यादा परिवर्तन नहीं आया है। ध्वनियों के लिए भले दो से चार वाद्यों का उपयोग किया जाता हो, उद्देश्य तो वही है जो तब था। आज आधुनिक वाद्यों से आवाज में "रियालिटि" का भास होता है। प्रकाश व्यवस्था और ध्वनि व्यवस्था एक दूसरे के पूरक होते हैं। प्रकाश ध्वनि के बिना प्रभावशाली नहीं होता या ध्वनि के साथ प्रकाश व्यवस्था न होना प्रसंगानुकूल नहीं लगता। उदा॰सुबह और शाम (रात) का आभास प्रकाश माध्यम से व्यक्त किया जाता है, सुबह के साथ मुर्गे की आवाज होना ज्यादा प्रभावशाली रहेगा।

मोहन राकेश ने ध्वनि माध्यम का बहुत प्रभावपूर्ण उपयोग अपने नाटकों में किया है। राकेश के नाटक तीन प्रकार के हैं। एक नाटक युगों का संकेत देता है, दूसरा एक रात बीतने का संकेत देता है, तो तीसरा नाटक कालातीत है। इन तीनों नाटकों के काल का आभास प्रकाश और संवाद के माध्यम से दिया गया है।

आषाढ़ का एक दिन

इस नाटक में राकेश ने प्रकाश निर्देशन नहीं दिया है। प्रकाश निर्देशन की जगह बिजली और वर्षा की लय का उल्लेख किया है। बिजली कौंधना या वर्षा कम तेज लय में बरसने का आभास दिखाना, प्रकाश और ध्वनि से व्यक्त करना पड़ा है। यह भावना का प्रतीक है।

प्रथम अंक में आरम्भ में बिजली और वर्षा का उल्लेख है। मल्लिका और कालिदास के संवादों के मध्य में बिजली का कौंधना है। उदा॰मल्लिका का स्वगत §कालिदास से मन में बातें करती है, उसे अपने त्याग समर्पन का हिसाब माँगती है, कि "मुझे मेरी सत्ता के बोध से इस तरह वंचित कर दोगे ?"§ समाप्त होना बिजली का कौंधना और किवाड़ खोलकर कालिदास का आगमन। ये बातें ऐसे झटके से होती हैं कि प्रेक्षक एकदम सहम जाता है। बिजली और वर्षा की गर्जना से राकेश ने वातावरण की निर्मिति की है।

पात्रों के मनोभाव उद्‌घाटित होने के लिये ध्वनि का सहयोग महत्वपूर्ण है। अम्बिका और मल्लिका के संवादों के बीच अम्बिका के क्रिया का ध्वनि उदा॰मल्लिका की बात सुनते-सुनते धान फटकना। और पूरे नाटक में पार्श्वध्वनि वर्षा की है। राकेश ने वर्षाध्वनि का उपयोग वातावरण निर्मिति के साथ अभिनय के लिये किया है। वर्षा इस नाटक का एक पात्र महसूस होता है। समय-समय पर तेज और धीमी फुहारों वाली वर्षा पूरे नाटक में अपना अलग अस्तित्व रखती है।

लहरों के राजहंस

"लहरों के राजहंस" नाटक में प्रकाश निर्देशन दिया है। शशांक से बातें करता नन्द और आकाश की ओर बाहें फैलायी पुरूष मूर्ति पर प्रकाश होना दोनों को एक जैसी मानसिक अवस्था में होने का आभास करा देता है।

बुद्ध भिक्षुओं का स्वर बौद्ध वातावरण की निर्मिति करता है। नेपथ्य से आने वाला यह स्वर अनेक बौद्ध अनुयायी होने का आभास निर्माण करता है। साथ

ही पवित्र, गंभीर स्वर से संन्यस्त भिक्षुओं की शांत मनोदशा व्यक्त करता है।

ताल में राजहंसों का कलरव सुनायी देता है। जब राजहंसों को पत्थर मारा जाता है, अपने ही सुख आनंद में मग्न राजहंसों का एकदम घबराया कलरव आगे आने वाला प्रसंग का सूचक है। वैसे ये लहरों पर सुखनैव तैरते राजहंस नन्द और सुन्दरी हैं, जिनके आयुष्य में बुद्ध का और यशोधरा का संन्यास लेना खलबली उठा गया है।

आधे अधूरे

इस नाटक में राकेश ने समझदारी के साथ प्रकाश का सूचक उपयोग किया है। नाटक के आरम्भ में प्रकाश प्रथम टूटे ही सेट तथा डायनिंग टेबल को आलोकित करता है। फटी किताबें, टूटी कुर्सियों को प्रकाश प्रकाशित करता जाता है। प्रकाश पुनः इस कोने के उस कोने को प्रकाशित करता रहता है। मनो प्रकाश से नाटककार पूरे घर की जर्जरता, टूटापन दिखलाना चाहता है।

सावित्री घर छोडने का निश्चय कर चुकी है। इस बात का परिणाम प्रकाश माध्यम से अधिक प्रभावशाली व्यक्त हुआ है। प्रकाश जैसे सूचित करता है सावित्री जाने से घर सिमट जायेगा, अंत में विलीन हो जायेगा। उदा· "प्रकाश आकृतियों पर धुंधला कर कमरे के अलग अलग कोने में सिमटता विलिन होने लगता है। मंच पर पूरा अंधेरा होने के साथ संगीत भी रूक जाता है। "

महेन्द्रनाथ के घर लौटने पर स्त्रियों पर फैला प्रकाश मध्यम पड़ जाता है, ऐसा प्रतीत होता है जैसे दोनों स्त्रियों की खुशी को ग्रहण लग गया हो। महेन्द्रनाथ और लड़का अंधेरे में आगे बढ रहे हैं, महेन्द्रनाथ की आकृति धुंधली है। प्रकाश माध्यम से पात्रों के विशिष्ट स्वभावों पर प्रकाश डाला जाता है।

मातमी संगीत "सब कुछ खत्म होने वाली" स्थिति की ओर निर्देश करता है। कैंची की आवाज विक्षुब्ध मानसिकता दर्शाती है।

वेश-भूषा

तीनों नाटकों में पात्र इतने ठोस व्यक्तिमत्व के हैं कि वेशभूषा गौण नजर आती है। फिर भी कालिदास हो, नन्द हो या महेन्द्रनाथ का परिवार हो, कथावस्तु को प्रभावी बनाने के लिए विशिष्ट वेशभूषा होना आवश्यक है।

आषाढ़ का एक दिन

'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास एक गरीब परिवार का अनाथ लड़का है, प्रथम अंक में उसकी स्थिति दयनीय है। अन्त में जब वह फिर सामने आता है तब वेशभूषा में सूक्ष्म बदलाव अपेक्षित है। टूटा-थका हुआ राजकवि, राजा का जमाई कालिदास है। बरसात में भीगता हुआ आया है। वेशभूषा का निर्देशन नाटककार ने दिया है। मल्लिका या अम्बिका के कपडें तथा दन्तुल एवं प्रियंगुमंजरी को वेशभूषा के लिए ज्यादा मेहनत करने की जरूरत नहीं।

लहरों के राजहंस

यह सम्पूर्ण नाटक राजप्रासाद में खेला गया है। सभी पात्रों के लिए विशिष्ट वेशभूषा की आवश्यकता है, जैसे नन्द और सुंदरी के लिए ऊँचे वस्त्र, श्यामांग अलका, निहारिका के लिए मध्यम वस्त्र होने चाहिए। इस नाटक में आभूषणों का होना आवश्यक है।

आधे अधूरे

नाटक में वेशभूषा गौण है। सभी पात्र एक मध्यमवर्गीय परिवार के सदस्य हैं। इनकी वेशभूषा उम्र के हिसाब से होना आवश्यक है। काले सूटवाला आदमी, सिंघानिया, जुनेजा के लिए अगल वस्त्र-प्रावरण है। चेहरा कोई महत्व नहीं रखता इन पात्रों की चकाचौंध वेशभूषा ही इनके गुण हैं, जिसे देखकर सावित्री आकर्षित होती है। सावित्री नौकरी करने वाली औरत है तीन-चार पर्स साडियाँ होना पात्र के व्यक्तित्व की माँग है। बाकी पात्रों की वेशभूषा उम्र के हिसाब से योग्य है। इस नाटक के वेशभूषा की महत्वपूर्ण बात यह है कि, प्रयोग में प्रतिकात्मकता

है। इस नाट्य में एक ही पुरूष चार भूमिकाएँ निभाता है। काले सूट वाले व्यक्ति की वेशभूषा, व्यक्तित्व के साथ बदलती है।

उदा॰पुरूष एक - पतलून कमीज (जिंदगी से अपनी लडाई-हारचुकने की छटपटाहट के लिए)।

पुरूष दोन - पतलून और बन्द गले का कोट। (अपने आप से संतुष्ट फिर भी आशंकित)।

पुरूष तीन - पतलून टी शर्ट। (हाथ में सिगरेट का डिब्बा। लगातार सिगरेट पीता)।

पुरूष चार - पतलून के साथ पुरानी काट का लंबा कोट।

इसीप्रकार वेशभूषा में सांकेतिकता और प्रतिकात्मकता का निर्देश है।

भाषा/संवाद

नाट्यकला के दो अंग हैं - दृश्य और श्राव्य। प्रेक्षक एक ही समय देखता है और सुनता है। इसलिए भाषा का प्रयोग दृश्य से विसंगत नहीं होना चाहिए। जैसे जीवन जटिल होता जा रहा है भाषा जीवन की भावनाएँ सूक्ष्मता से व्यक्त करने में असमर्थ हो रही है। जीवन की भावनाओं को संवेदन के साथ प्रस्तुत करना हो तो भाषा सर्जनशील होनी चाहिए। नाटक के क्षेत्र में प्रथम नाटकीय भाषा के बारे में मोहन राकेश ने चिंतन किया। राकेश मानते थे हिंदी नाटक और रंगमंच का विकास होने के लिए नाटक में रंगमंचीय संभावनाएँ होनी चाहिए। नाट्यकला शब्द और ध्वनि के आधार पर निर्माण होती है। रूसी नाटककार आर्बुजोफ से हुई बातचीत में उन्होंने अपना मत विस्तार से दिया था - "रंगमंच की शब्द निर्भरता का अर्थ रंगमंच में शब्द की आधारभूत भूमिका है। इस भूमिका का निर्वाह माध्यम सीमाओं में शब्दों के संयम से हो सकता है, उनके अतिरिक्त तथा अनपेक्षित प्रयोग से नहीं। शब्दों की बाढ़ से, या बिना नाटकीय प्रयोजन से प्रयुक्त शब्दों से रंग

सिद्धि संभव नहीं, क्योंकि बिंब को जन्म देने के साथ-साथ उस बिंब से संयोजित रहने की संभावना भी शब्दों में होनी आवश्यक है।

भाषा

आषाढ़ का एक दिन

"आषाढ़ का एक दिन" में भाषा चुस्त है। नाटक का परिवेश ऐतिहासिक होने के कारण ऐतिहासिक शब्दों का प्रयोग किया है। संस्कृत शब्दों का उपयोग किया है जैसे - अंकुश, शर्करा, उपत्यकाएँ, आस्तरण, वंशावतंस, प्रकोष्ठ, निर्कज, परिसंस्कार, अयाचित आदि। नाटक में कोई निरर्थक शब्द नहीं हैं। लय पैदा करने वाले शब्द हैं। शब्द समयानुकूल और योग्य भावना के प्रदर्शन में सफल हैं। नाटक में ऐसी संस्कृत-निष्ठ भाषा होना नाटक की प्रथम माँग है, इस कसौटी पर राकेश सफलतापूर्वक अपनी छाप छोड़ गये हैं। नाटक की भाषा मंचीय अपेक्षा को पूरी करती है। जो भाषा मंचीय आवश्यकताओं को पूरी करती है वही भाषा सार्वजनिक धरातल पर उतरती है। नाटक संस्कृत है, फिर भी पूरा हिंदी नहीं लगता है। संस्कृत का आभास होता है। यही सबसे बडी राकेश की सफलता है। भाषा में मुहावरों का प्रयोग किया गया है।

राकेश के नाटक के संवाद की भाषा भी मिथकीय ढंग की है। प्रसाद के नाटकों की भाषा को अपनी भाषा-प्रकृति के अनुरूप ग्रहण किया है। जिस युग की कथावस्तु इस नाटक में है उसी युग का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। संस्कृत शब्दों का प्रयोग इस ढंग से किया है कि ये शब्द संस्कृत होते हुए भी हिन्दी के लगते हैं। प्रेक्षक आसानी से समझ सकते हैं। भाषा में हिन्दी के सहज प्रवाह की रक्षा हुई है। नाट्य भाषा सांकेतिक है। ध्वनि, लय, संकेत आदि द्वारा एक ही भाषा के शब्द नये-नये अर्थ में प्रयुक्त हो गये हैं। उदा॰तिलतिल कर गलना, तीसना नेत्र खुलना, शरीर निचुडने लगना, अपवाद फैलाना, स्वयं पर अपना अधिकार न रहना, ओठ फड़-फड़ाने लगना। मुहावरे जनभाषा का प्रतीक होती है, राकेश ने इसका खूबी के साथ प्रयोग किया है।

व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग अम्बिका या विलोम के मानसिकता को स्पष्ट करती है। व्यंग्यात्मक भाषा वाक्चातुर्ययुक्त होती है, तीखी होती है, टेढ़ी होती है। उदा.

"मैं घर में दुकेली कब होती हूँ। तुम्हारे यहाँ रहने पर मैं अकेली नहीं होती ?"

"मैं जानती हूँ कि तुम पर आज अपना अधिकार भी नहीं है।"

नाटक की भाषा सहज, सरल, जीवंत एवं प्रवाही है। शब्दों में अद्भुत सामर्थ्य है प्रत्येक शब्द को अपना बल और महत्व है। सुषमा अग्रवाल कहती हैं - "भावों का आसव पीकर शब्दों में तिलमिला देने वाली वेदना का स्पर्श है।"[4]

संवाद

संवाद नाटक का प्रमुख तत्व है। चुस्त संवाद ही पात्रों को जीवंत बनाते हैं। नाटककार संवादों के माध्यम से कथावस्तु को प्रभावशाली बनाता है। संवादों के माध्यम से पात्रों का चरित्र भी स्पष्ट होता है। संवाद नाटक की जान होते हैं। मोहन राकेश ने तीनों नाटकों में संवाद चुस्त लिखे हैं, हर एक शब्द जैसे तराशकर बनाया है। राकेश की विशेषता रही है कि संवाद छोटे हैं, जहाँ दीर्घ संवाद हैं, वहाँ परिस्थिति की माँग के अनुसार हैं।

संवाद ऐसे हों जो कम से कम शब्दों में भाव व्यक्त करें। कथोपकथन के माध्यम से नाटककार ने अपूर्व वातावरण का निर्माण किया है। पात्रों की मानसिक अवस्था का एहसास संवाद से हो जाता है। उदा.

अम्बिका : देख रही हो मैं काम कर रही हूँ।

मल्लिका : काम तो हरसमय करती हो। परन्तु हरसमय इस तरह चुप नहीं रहती।

अम्बिका : क्या बात करूं ?

राकेश का कथोपकथन प्रवाही होता है। प्रत्येक वाक्य, का संदर्भ आगे मिल जाता है। उदा·

मल्लिका : फिर उदास हो गए ?·····देखो तुम मुझे वचन दे चुके हो।

कालिदास : फिर एक बार सोचो मल्लिका। प्रश्न सम्मान और राज्याश्रय स्वीकारने का ही नहीं है। उससे बड़ा एक प्रश्न मेरे सामने है।

मल्लिका : और वह प्रश्न मैं हूँ·····हूँ न ?

लहरों के राजहंस

"लहरों के राजहंस" नाटक की भाषा उसी द्वंद को प्रस्तुत करती है जो द्वंद और तनाव सभी पात्र भोग रहे हैं। राकेश के नाटक की भाषा के शब्द स्वयं क्रिया का कार्य करते हैं। वास्तव में पात्र क्रिया के माध्यम से बोलते हैं, और स्वयं क्रिया ही संवाद बन जाती है। "लहरों के राजहंस" नाटक की भाषा क्रिया और संवाद की उलझन स्पष्ट करती है। उदा·

श्वेतांग : (कार्य में व्यस्त) तुम्हारी उलझन अभी समाप्त नहीं हुई ?

श्यामांग : (पत्तियों को तोड़ने-सुलझाने में व्यस्त) मुझे तुमसे ईर्ष्या होती है।

श्वेतांग : मुझसे ईर्ष्या होती है, क्यों ?

श्यामांग : देखो न, एक के बाद एक दीपक जलता है। न कुछ उलझता है, न बिखरता है।

श्वेतांग : इसका कारण है।

श्यामांग : कारण है ? क्या कारण है ? (कुछ पत्तियाँ हाथ में लिए हुए श्वेतांग के पास चला जाता है।) मेरे हाथों में काम क्यों उलझ जाता है।"

यहाँ श्यामांग के शब्द और क्रिया श्यामांग की मानसिक उलझन को स्पष्ट करते हैं। राकेश की नाट्यभाषा लयात्मक है। नाटक में भाषा इतनी जिम्मेवार घटक है कि आप कोई शब्द एक जगह से दूसरी जगह नहीं रख सकते। नन्द,

सुन्दरी और अन्य पात्रों की भाषा नाटक के रंगमंचीय तत्व के अनुसार हैं।

आधे अधूरे

नाटक मनोरंजन का दृश्य साधन है। नाटक का सम्बन्ध सीधे प्रेक्षक से आता है। नाटक के पात्रों के साथ प्रेक्षक एकरूप होता है। नाटक की भाषा नाटक के विषयानुरूप चाहिए। ऐतिहासिक नाटकों की भाषा अलंकार और जड़ शब्दों से भरपूर होती है। नाटक की भाषा कठिन नहीं होनी चाहिए। कठिन भाषा होगी तो समझने में आसानी नहीं होगी। प्रत्येक स्तर के प्रेक्षक के पल्ले पड़ने वाली भाषा होनी चाहिए। विमलकुमार अग्रवाल का कहना है -

"नाटक की भाषा के शब्द अपरिचित और कठिन न हों, उसके संदर्भ भी घुमावदार न हों। नाटक देखने में साहित्यिक लगे यह उसका कोई गुण नहीं है। अतः शब्द सरल होने चाहिए।....किंतु कई बार बोलचाल के शब्द यथार्थ के नाम पर बड़े घीसे-पीटे अर्थ और संदर्भ उभारते हैं। अतः सरल भाषा को इस तरह प्रयोग में लाना चाहिए कि उसमें महत्वपूर्ण शब्दों का भार ढ़ोने की क्षमता आ जाये।"[5]

भाषा ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा एक व्यक्ति के मन के विचार दूसरें तक पहुँचते हैं। राकेश की भाषा में यह खूबी है कि उसका हर एक शब्द नपा-तुला और तराशकर लिखा है। "आधे अधूरे" नाटक के शब्द अपने साथ सिर्फ एक ही अर्थ लेकर नहीं आते हैं, साथ में अगणित ऐसी घटनाओं का भार ले आते हैं, जो घटनायें बीत चुकी हैं। उदा.

बडी लडकी : खास बात तो कोई नहीं....

स्त्री : तो ?

बड़ी लड़की : ...और सभी बातें खास हैं।

स्त्री : जैसे ?

बड़ी लडकी : जैसे....सभी बातें।

स्त्री : जब सब ठीक ही ठीक है तो कोई बहुत ही खास वजह होनी चाहिए।

बड़ी लड़की : वजह सिर्फ हवा है, जो हम दोनों के बीच से गुजरती है।

इस भाषा से एक तनाव महसूस होता है। उलझन महसूस होती है। लडकी बात करती तो है लेकिन मन के उलझन का कारण बता नहीं सकती। शब्द और भाषा का लहजा मनःस्थिति बताने में सफल होते हैं।

कहीं कहीं वाक्य अधूरे हैं, शब्द अधूरे हैं पर वे पूरा अर्थ व्यक्त करते हैं। अधिकांश स्थलों पर वाक्यों में बिंदुओं का प्रयोग किया है।यह बिंदू भी उस तनावपूर्ण स्थिति को व्यक्त करते हैं।

"आधे अधूरे" नाटक समकालीन है, इसकी भाषा सरल, सीधी फिर भी मार्मिक है। इस नाटक की भाषा में क्षिप्र शैली का प्रयोग किया है। हरेक पात्र बात से बात निकालना चाहता है। भाषा लेखक के मन की अवस्था की वाहिका बनी है। इस नाटक की भाषा में किसी प्रकार की नाटकीयता नहीं है। जीवन मे जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है उसी भाषा का प्रयोग किया गया है।

"आषाढ़ का एक दिन" और "लहरों के राजहंस" नाटक में भाषा साहित्यिक, रोमांटिक और भावुकता से भरी है। इस नाटक का वातावरण, पृष्ठ, भूमि, अलग है इसलिए भाषा भी इस वातावरण के पोषक है।

पहले दो नाटकों की अपेक्षा इस नाटक में अंग्रेजी, अरबी, फारसी तथा संस्कृत शब्दों का प्रयोग मिलता है। उदा·तकदीर, ख्वार, गर्द, मेगजीन, मीटिंग, एक्टिंग। संस्कृत से - आकृति, तटस्थता, सांख्यिकी आदि।

इस नाटक में मुहावरों का प्रयोग किया है। जैसे - हवा बाँध रखी थी, हड्डियों में जंग लग गया, सिर फिर गया, हवास गुम होने शुरू हुए।

नाटक में भाषा की वक्रता है। उदा॰ - "जुनेजा तो एक पूरा आदमी है अपने में और वह खुद ? वह खुद एक पूरे आदमी का आधा चौथाई भी नहीं है।"

अलंकारिक भाषा का प्रयोग भी किया गया है। उदा॰ - "देख नहीं रही यह लपलपाती जीभ, ये रिसती गुफाओं जैसी आँखें।"

इस नाटक के सभी पात्र अपने व्यक्तित्व के अनुसार भाषा का प्रयोग करते हैं। अशोक का सिंघानिया को चुकन्दर कहना, विद्रोही प्रवृत्ति को दर्शाता है। महेन्द्र का कहना, "सिंघानिया! इसका बॉस! वह नया आनाजाना शुरू हुआ है आजकल।" यह वाक्य महेन्द्र के स्वभाव को दर्शाता है कि उसे सावित्री के अतिथियों पर रोष है, साथ सावित्री के चालचलन पर कटुता से दंश करता है।

इस भाषा की विशेषता यही है कि तनाव को भाषा ठीक तरह से व्यक्त करती है।

इस अवलोकन के पश्चात हम कह सकते हैं कि राकेश की भाषा-यात्रा "जानने की भाषा" से लेकर "जीने की भाषा" तक पहुँचने की है।

भाषा प्रयोगों की कलात्मक परिणती "आधे अधूरे" में मिलती है। यह तनावपूर्ण भाषा है। रंगमंच पर शब्द से बिंब बनता है। रूमानियता, आधुनिकता का संघर्ष रंग शिल्प के साथ भाषा धरातल पर भी किया।

"आषाढ़ का एक दिन", "लहरों के राजहंस" की भाषा को तराशा है। यहाँ नाटकों को नया संस्कार देते हुए भाषा के स्तर पर नाटकीय बताया। यही कारण है कि "आधे अधूरे" की भाषा परस्पर तनाव, बिखराव, अलगाव, ऊब, घुटन, झल्लाहट, छटपटाहट, बिखराहट, आक्रोश, विद्रोह, विडम्बना, संघर्ष और मनहूसियत को जीने की भाषा में प्रस्तुत करती है। यह भाषा, शब्द, ध्वनि, मौन, क्रिया, मंचसज्जा, संगीत प्रकार से बनी है। इस भाषा पर उर्दू, फारसी, अंग्रेजी का प्रभाव है। बच्चे पढे-लिखे कान्वेंट शिक्षित होने से अंग्रेजी शब्द आये हैं। उर्दू, फारसी का अधिक

पंजाबी परिवार का वातावरण है। 26 मुहावरों का प्रयोग कुछ मुहावरें जैसे भी प्रयोग हैं। क्रियाओं द्वारा भी अभिव्यक्ति हुई है। राकेश की नाट्यभाषा में शब्द और क्रिया का सहयोग है। क्रिया व्यापार अधिक दिया है। 65 पंक्तियों में 15 पंक्तियाँ शाब्दिक संवाद हैं। इस प्रकार राकेशजी ने अपने नाटकों के संवादों में भाषा का प्रयोग करते समय रंगमंच का ध्यान रखा है।

नाटक और रंगमंच का संबंध अटूट है। रंगमंच के लिए निर्देशक, अभिनेता, रंगकर्मी महत्वपूर्ण है, पर इनके साथ नाटककार का महत्व बताते हुए राकेश ने कहा है कि - "रंगमंच की पूरी प्रयोग प्रक्रिया में नाटककार केवल एक अभ्यागत सम्मानित दर्शक या बाहर की इकाई बना रहे, यह स्थिति मुझे स्वीकार नहीं। न ही यह कि नाटककार की प्रयोगशीलता उसकी अपनी अलग चार दीवारी तक सीमित रहे और क्रियात्मक रंगमंच की प्रयोगशीलता उससे दूर अपनी अलग चारदीवारी तक। इन दोनों को एक धरातल पर लाने के लिए अपेक्षित है कि नाटककार पूरी रंग प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंब बन सके।"[7]

नाटककार नये नाट्यप्रयोग जब करता है तब उसे अपने परिवेश से जुड़ना होता है और प्रत्यक्ष रंगमंच के साथ जुड़े रहना पड़ता है। राकेश ने कहा है - "If a play wright wants to try out new dramatic structures not experimented with before, he has to see the visions of his imaginations cast into solid images of theature before he can finally accept or reject them. This end is impossible to achieve without his active participation in practical theature as a part of his creative routine."[8]

राकेशजी के नाटकों का अध्ययन करते समय उनके रंगमंचीय दृष्टि का अध्ययन किये बिना, अध्ययन अधूरा होता है। इसलिए उनके नाटकों की मंचीयता पर विचार किया है।

इस परिशीलन के बाद हमें दिखायी देता है कि मोहन राकेश ने अपने नाटकों के द्वारा जिस वस्तु का प्रस्तुतिकरण किया, चाहे भले वह इतिहास का माध्यम लेकर आयी हो उसका संबंध वर्तमान जीवनानुभूति के साथ जुड़ा हुआ दिखायी देता है। यही कारण है कि मोहन राकेश को आधुनिक नाट्य साहित्य का प्रवर्तक माना जाता है। राकेशजी ने जैसे नाटकों को इतिहास के साथ यथार्थता के साथ तथा आधुनिकता से जोड़ा वैसेही रंगमंच की महत्ता जानकर उसे अभिनय योग्य बनाया यही कारण है कि इन्हीं दृष्टियों से उनके नाटकों का विवेचन किया है।

संदर्भ

1· डॉ·नरनारायण राय, "रंगशिल्पी मोहन राकेश", कादंबरी प्रकाशन, दिल्ली,पृ·18

2· गोविंद चातक, "आधुनिक नाटक का मसीहा मोहन राकेश", इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ·57

3· गिरीश रस्तोगी, "नाटक और रंगमंच : मोहन राकेश और उनके नाटक", लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ·11-12

4· डॉ·सुषमा अग्रवाल, "समकालिन नाट्यसाहित्य और मोहन राकेश के नाटक" अनुपम प्रकाशन, जयपुर, पृ·68

5· विपिनकुमार अग्रवाल, "आधुनिकता के पहलू", पृ·75

6· मोहन राकेश, "आधे अधूरे", पृ·29 और 31

7· डॉ·निर्मला हेमन्त, "आधुनिक हिन्दी नाट्यकारों के नाट्यसिद्धान्त", पृ·378

8· वही, पृ·377